

श्रीमते रामानुजाय नमः



मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा

लेखक
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य
सरौती स्थानाधीश

|

श्री पराङ्कुश ग्रन्थमालायाः सप्तमं सरोजम्

द्वितीय संस्करण

गुरु पूर्णिमा

सम्बत् 2043 श्रीमते रामानुजाय नमः

दो शब्द

भगवान्की सृष्टि में दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं - एक दैवी प्रकृति और दूसरा आसुरी प्रकृति का। “दैवी सम्पद्धिमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। गी. 16।5।” इन दोनों का दृष्टिकोण भी पृथक्-पृथक् रहता है। एक वस्तु में भी दोनों को दो प्रकार के भान होते हैं, जैसे जिह्वा स्वाद की भिन्नता के कारण नीम की पत्तियों में मनुष्य को तीतापन और ऊँट को मधुरापन प्रतीत होता है। इसी प्रकार देव और दैवी प्रकृति वाले श्री राम जी ईश्वर प्रतीत होते हैं - “भगवान्नारायणो देवः।” और आसुरी प्रकृतिवाले को प्राकृत पुरुष प्रतीत होते हैं।

मल्लानामशनिर्नृणान्नरवरस्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोर्शिषुः।

मृत्युर्भोजपतेर्विराड्विदुषां तत्त्वं परं योगिनामवृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गङ्गातस्सागजः। भा. 10।43।17।”

कंस के समीपस्थ लोगों ने अपने-अपने संस्कार के अनुकूल एक ही कृष्ण को दस प्रकार से देखा। दैवी प्रकृति वाले को भगवान्का दिव्य मंगल विग्रह दिव्य ही प्रतीत होता है - “न तस्य प्राकृतिर्मूर्तिः मांसभेदोऽस्थिसंभवाः।”

इसी प्रकार श्री राम जी हरिभक्तों को दयालु और दया वृत्ति का प्रतीत होते हैं और पापियों को हिंसक और हिंसा वृत्ति वाले प्रतीत होते हैं। इसी कारणवश वाल्मीकि रामायण में भी पापियों को श्री राम जी के व्यापार हिंसापूर्ण और पुण्यात्माओं को अहिंसापूर्ण प्रतीत होते हैं। शब्द को कल्पद्रुम माना गया है उससे चाहे अमृत माँग ले या विष, वह दोनों को देनेवाला है, याने कल्याणप्रद अर्थ और नरकप्रद अर्थ। एक ही शब्द को लोग अपने- अपने पूर्व जन्म के संस्कारों से भिन्न-भिन्न अर्थ किया करते हैं।

निवेदक -

पराङ्कुशाचार्य

सरौती।

इस पुस्तिका में आये हुए भ्रमात्मक शब्दार्थ

संस्कृत	हिन्दी	कोष-नाम
अजा	बीज	भाषा कोश
आमिष	राजभोग, उत्कोच (घुस)	मेदिनी
एण	ऊन	शब्दार्थ कौस्तुभ
ऐणेय	वराहीकन्द, गजकन्द, रतालु	निघन्टु
ऐणेय	कृष्णमृग के ऊन का बना कम्बल	निघन्टु
कुक्कुट	चिनगारी, कृतअनुष्ठान, नागरमोथा	निघन्टु
गौ	चावल	अथर्ववेद
गौ	स्वर्ग, किरण, कुलिश	अथर्ववेद
छाग	निर्मल	अथर्ववेद
बलि	नैवेद्य	अथर्ववेद
वाराह	वाराहीकन्द, कसेरू	निघन्टु
भक्त	विभक्त (भागों में बँटा हुआ)	निघन्टु
भक्तम्	प्राणधारक	मेदिनी
भूतौदन	तिल, लाजा, दधि, यव, हरिद्रायुक्त सिन्धु ओदन	वैद्यक शब्द
मधु	पुष्प रस, शहद, गुड़	शब्दार्थ पारिजात
मदिरा	आम्र-वृक्ष	शब्द कौस्तुभ
मद	हर्ष, हाथी का दान-जल	मेदिनी
मत्स्य	सोमलता	शब्द कौस्तुभ
मत्स्य	क्रोध, भू, कुसुम, माला	मेदिनी
मयूरशिखा	एक बूटी (पृष्ठपर्णी)	मेदिनी
मांस	छिलका, गुद्दा (फल का भीतरी भाग)	भावप्रकाश
मांस	काकोली, जटा, भूमि से उत्पन्न वनस्पति	मेदिनी
मांस	चावल का श्याम भाग	अथर्ववेद
मांस	पौष्टिक वस्तु	मरीचि संहिता
मृग	वाराहीकन्द, गजकन्द, मेदा, महामेदा, याचना, अनुसन्धान	शब्दार्थ कौस्तुभ
संस्कृत	हिन्दी	कोष-नाम

मृग	हाथी, नक्षत्र, अन्वेषण	मेदिनी
-----	------------------------	--------

मृगारि	कुंकुम	मेदिनी
मृष्ट	पवित्र, साफ, गुद्दा	मेदिनी
मैरेय	द्राक्षारस	शब्द कौस्तुभ
रजनी	हरिद्रा, रात	शब्द कौस्तुभ
रुधिर	चावल का लाल भाग	अथर्व वेद
रोहिष	घास	मेदिनी
शोणित	रस, कुंकुम	मेदिनी
शृंग	जीरा	अमरकोश
सुरभी	सालम मिश्री	अमरकोश
सुरा	पंचामृत	अमरकोश
(सु उपसर्ग पूर्वक रा आस्वादने धातु निष्पन्न)		अमरकोश
	सुन्दर स्वादवाला	
सुरा	सु उपसर्ग पूर्वक रा पुंसि स्वर्ण वित्तयो	मेदिनी

श्रीमते रामानुजाय नमः

प्राग्वक्तव्य

“दुर्लभो विषयत्यागः दुर्लभं तत्त्वदर्शनम् । दुर्लभा सहजावस्था सदगुरोः करुणां विना । ।”
भगवत्कृपा विना वास्तविक रहस्य ज्ञान दुर्लभ है । श्री व्यास जी का कथन है - “पिवत भागवतं रसमालयं मुहुर्हो रसिका भुवि भावुकाः । भा 1 । 1 । 3 ।” सदग्रन्थों के रहस्यावलोकन में सहृदयता, भावुकता एवं तन्मयता की आवश्यकताएँ होती हैं । ऐसा करने से कोई भी पाठक किसी सदग्रन्थ के तत्त्वज्ञान करने में समर्थ हो सकता है । जिस वस्तु में अनवरत भावना लगायी जाती है वह वस्तु अप्रत्यक्ष रहने पर भी प्रत्यक्षवत् भासती है । “वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम् । वा.रा. अरण्य 39 । 15 ।” यह मारीच का वचन है । इसमें भावना प्रकर्ष ही झलकता है ।

इसी प्रकार - “ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः ।” इस श्रुति में स्पष्ट ही निर्देश दिया गया है । यद्यपि “ध्यै चिन्तायाम्” यह धातु परस्मैपदी है, इसलिए ‘ध्यायमानः’ इस शब्द में शानच्प्रत्यय नहीं होना चाहिए, तो भी वैदिक प्रयोग होने से शानच्प्रत्यय होगा । श्री वाल्मीकि रामायण महर्षि श्री वाल्मीकि जी की पुण्यमयी रचना है । इसका मूलाधार गायत्री के चौबीस अक्षर हैं । यही चौबीस अक्षरों का प्रतीक, चौबीस सहस्र श्लोकों वाला गायत्री भाष्य रूप रामायण जो वेदस्वरूप है, बना - “वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षात् रामायण आत्मना । अगस्त संहिता ।” अर्थात् वेदवेद्य नारायण राम रूप से आए तो उनका प्रकाशक वेद भी रामायण रूप में अवतीर्ण हुआ । इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी का वास्तविक चरित्र-चित्रण है तथा मनुष्य जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अनुकरणीय चरित्रों का स्वाभाविक दिग्दर्शन कराया गया है जिसमें आध्यात्मिक और लौकिक जीवन सफल हो सकते हैं ।

यह कर्मप्रधान महाकाव्य है । इसके पात्र उदात्तवृत्ति के दिव्य पुरुष हैं । सभी पात्रों का चरित्र-वर्णन निष्पक्ष भाव से

किया गया है। भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का जैसा चरित्र वर्णन इस रामायण में किया गया है ऐसा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। यह आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों का पूर्ण भण्डार है।

“रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजम्। अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्। वा.रा. अयो. 40।8।” अयोध्या से वन गमन के समय में श्री शेष लक्ष्मण जी के प्रति उनकी माँ सुमित्रा कहती हैं कि हे पुत्र ! प्रसन्न चित्त से वन जाओ, माता पिता श्री जानकी जी और भगवान् श्री रामजी को समझो, जंगल को अयोध्या समझो। यह उपदेश आत्मज्ञान ही तो है।

“पापानां शुभानां वा वधार्हानां प्लवंगम्। कार्यकारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति। वा.रा. युद्ध 116।43।” कोई पापी हो या धर्मात्मा अथवा वध करने योग्य ही क्यों न हो किन्तु श्रेष्ठ जनों को उस पर दया ही करनी चाहिए। क्योंकि ऐसा कोई है ही नहीं जिसने अपराध न किया हो, कुछ न कुछ अपराध तो सभी से हुआ ही करता है।

“न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्। समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः। वा.रा. युद्ध 116।44।” अपकारी को अपकार द्वारा बदला देना उचित नहीं अथवा दूसरे के बुरे काम को देखकर वैसा ही बुरा वर्त्ताव करना उचित नहीं। प्रत्येक जन को अपने आचार की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि आचार रक्षा ही साधुजनोचित भूषण है। इसलिए श्री वाल्मीकि जो को यह कहना पड़ा कि - “सीतायाः चरितं महत्। वा.रा. बाल. 4।7।” अर्थात् इस रामायण में सीता चरित्र महान् है। इसी गुण गौरव के कारण शेषावतार श्री स्वामी रामानुजाचार्य ने अपने पूज्य आचार्य चरणों द्वारा इस रामायण को अठारह बार पढ़ा और अठारह प्रकार के भाव समझे। ऐसे सात्विक ग्रन्थ को सात्विक वृत्ति से ही अध्ययन-मनन करना चाहिए। अन्यथा उसका रहस्य-ज्ञान तो दूर रहा, पाप का भागी भी होना पड़ेगा। कुवृत्ति से इस रामायण को अध्ययन करने वाले ही कुछ टीकाकारों ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी को हिंसक और मांस-भक्षी भी बना छोड़ा है जो उनके नियमादिकों के अत्यन्त विरुद्ध है। ऐसी परिस्थिति में अल्पज्ञ सर्वसाधारण मनुष्यों की क्या दशा होगी ? किस पक्ष को प्रमाणित मानेंगे ? इत्यादि शोचनीय उलझनों को दूर करने के लिए इस रामायण में मत्स्य मांसादि शब्दों की मीमांसा की गयी है। पाठक सप्रसंग पात्रों की उदात्तवृत्ति को ध्यान में रखकर पढ़ें और कल्याण का भागी बनें।

किसी गद्य के पद्य पद्यांश या वाक्यांशों के अर्थ विचार में सामान्यतया तीन बातों पर ध्यान देना चाहिए - प्रथम प्रकरण या प्रसंग, द्वितीय अधिकारी, तृतीय पूर्वापर विषयों का समन्वय में व्यतिरेक का अभाव। इन तीनों विषयों को ध्यान में रखते हुए अर्थ करने से वह अर्थ औचित्यपूर्ण रहता है अन्यथा अनर्थ में परिणत हो जाता है। ग्रन्थ की उत्तमता, ग्रन्थ लेखक और ग्रन्थाधिनायक की उत्तमवृत्ति पर आधारित है। अतः भगवान् श्री रामचन्द्र जी के कुलधर्म परिचयार्थ कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

वर्तमान कल्प के पूर्व पद्म-कल्प में राजा सत्यव्रत की अंजलि में भगवान् का मत्स्यावतार हुआ था। वही राजा सत्यव्रत स्वायंभुव मनु हुए - “अस्याभूत्प्रथमं जन्म मनोः स्वायंभुवस्य च। रघूनामन्वयं पूर्व राजा दशरथोऽभवत्।” इसी प्रकार नैमिषारण्य में मनु शतरूपा ने कठिन तपस्या द्वारा भगवान् को प्रसन्न कर यह वर मांगा कि आप तीन जन्मों तक मेरा पुत्र बनें - “पुत्रत्वं भज देवेश त्रीणि जन्मानि चाच्युत।” इसीलिए मनु ने दशरथ होकर श्री रामजी को पुत्र रूप में प्राप्त किया -

“रघोरथ कुले जातो रामनाम जनार्दनः।

ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुर्जातो दशरथात्मजः। कौशल्यायाञ्च भगवान् त्रेतायाञ्च मुदान्वितः।।

कैकेय्याः भरतश्चैव रामतुल्यो गुणेन च। लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नः सुमित्रायां गुणार्णवः। ब्रह्मवैवर्त पु. कृष्ण खं. 62।3-4।”

अवतार हेतु

“मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।” भगवान् का अवतार लोकशिक्षा, धर्म-संस्थापन एवं पापनिवारण आदि कारणों से होता है। “गो द्विज धेनु विप्र हितकारी। कृपासिन्धु मानुषतनुधारी। मानस सु. 38।2।” “प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया। गी. 4।6।” “धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। गी. 4।8।” इसी प्रकार के हेतु सभी अवतारों में पाये जाते हैं। सृष्टि संरक्षणादि कार्यों में श्रीलक्ष्मी जी

भगवान्के साथ ही रह सदा सहायता किया करती हैं। “अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा । वा. रा. सु. 21 । 15 ।” “यथा सर्वगतो विष्णुः तथैवेयं द्विजोत्तम ।” “गिरा अर्थ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न । वन्दौ सीतारामपद जाके परम प्रिय खिन्न । मानस वा का 18 ।” भगवान् और लक्ष्मी दोनों अपृथक से सदा रहते हुए लोक कल्याणार्थ सयत्न रहते हैं।

भगवान् श्रीरामजी का कुलधर्म परिचय

“एवमुक्त्वा विधातारं देवदेवो हरिः पिता । स्वचक्रेणाङ्कयित्वा तु तस्मै मन्त्रं ददौ स्वयम् । ।

सर्वलोकेश्वरो देवो ब्रह्मा मम पिता प्रभुः । ममापि विधिवन्मन्त्रं प्रददौ मुनि सत्तमाः । पद्म पु. उत्तर 223 । 67 - 69 ।”

परम्परया श्रीमन्नारायण से ब्रह्मा, नारद, वशिष्ठ, नैमिषारण्यवासीशौनकादि महर्षि, इक्ष्वाकु कुल के इक्ष्वाकु से दिलीप प्रभृति चक्रांकित श्रीवैष्णव थे। इसी प्रकार दिलीप के प्रति वशिष्ठ का वचन है -

“ममापि नारदस्यापि प्राक्तवान्मन्त्रमुत्तमम् । शौनकादिमहर्षीणां नैमिषारण्यवासिनाम् । ।

नारदः प्रददौ मन्त्रं प्रपत्तिं शरणागतिम् । एतद्गुह्यतमं राजन् जानन्ति महर्षयः । पद्म पु. उत्तर 223 । 74-75 ।”

परम्परा से महर्षि कश्यप से भगवान् श्रीरामचन्द्र जी इनके पूर्व पुरुष वशिष्ठ, हनुमान्प्रभृति चक्रांकित श्रीवैष्णव सिद्ध हैं। यही बात नारद पांचरात्रान्तर्गत वृहद्ब्रह्म संहिता आदि सद्ग्रन्थों में पायी जाती है -

“कश्यपादङ्कयित्वाङ्कं करिष्ये देवरक्षणम् । वशिष्ठमुनिशार्दूलादिलीपप्रमुखा नृपाः । ।

धारयिष्यन्ति भूलोके महाशस्त्रं सुदर्शनम् । रामो राजीवपत्राक्षो भूत्वा दशरथात्मजः । ।

धृत्वा तप्तायसीं मुद्रां देवकार्यङ्करिष्यन्ति । परमैकान्तिकं धर्मं वायुपुत्रो महाबलः । ।”

परमभागवत नामावली हारीत संहिता

वशिष्ठं वामदेवञ्च व्यासं शौनकमेव च । मार्कण्डेय चाम्बरीषं दत्तात्रेयं पराशरम् । ।

भरद्वाजं वलिं भीष्ममुद्धवाक्रूरपूर्वकम् । गुहं सुतञ्च वाल्मीकिं स्वाम्भुवमनुं ध्रुवम् । ।

नन्दञ्च वसुदेवञ्च दिलीपं दशरन्तथा । कौशल्याञ्चैव जनकं भक्ता इत्यादिकं ध्रुवम् । ।

महाभागवत का लक्षण

अर्थपंचक तत्त्वज्ञाः पंचसंस्कारसंस्कृताः । नवभक्तिसमायुक्ता महाभागवता स्मृताः । ।

तापं पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रयागस्तु पञ्चमः । महाभारद्वाज संहिता ।

इक्ष्वाकु से लेकर श्री रामचन्द्र प्रभृति में महाभागवत के आभ्यान्तर और बाह्य दोनों लक्षण विद्यमान थे। इसीलिए इस कुल के इष्टदेव रंगनाथ भगवान् इक्ष्वाकु को प्राप्त हुए थे और तबसे श्रीरामचन्द्रजी पर्यन्त सबों से पूजित होते हुए श्री रामचन्द्र जी जब रंगनाथ भगवान्को विभीषण को दे दिये तो विभीषण भगवान्को रंगपुरी में रखे जो आज भी वहाँ विद्यमान हैं।

“श्रीरंगशायी देवेशो विधिनाचर्यः सुरोत्तमः । स एवेक्ष्वाकुनाथानां तपसाविरभूद्भुविम् । पद्म पु. उत्तर 253 । 10 ।”

कौशल्या द्वारा रंगनाथ भगवान्की अनवरत आराधना

श्रीरंगनाथशायिनं सौम्यमिक्ष्वाकुल दैवतम् । सप्रीत्याप्रददौ तस्मै रामो राजीव लोचनः । पद्म पु. उत्तर 244 । 61 ।

प्रभाते त्वकरोत्पूजां विष्णोःपुत्रहितैषिणी । वा. रा. अयो. । 20 । 14 ।

पूजा हेतु कीन्ह पकवाना । मानस वा का 200 । 2 ।

“गुरोर्गुण गृहीता च”के अनुसार लोक संग्रह शिष्टाचार के लिए श्री राम जी कुलधर्मानुसार उर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाया करते थे। “भाले दधानं सितमूर्ध्वपुण्ड्रं पीतश्रियं मध्यविराजमानम् । अगस्त्य संहिता ।” जनकराजा ने श्री रामचन्द्र जी के मस्तक में उर्ध्वपुण्ड्र तिलक देखा था।

“भाल तिलक श्रमविन्दु सुहाए । मानस वा. 232 । 2 ।” “तिलक रेख शोभा जनु चाँकी । मानस वा. 218 । 4 ।” “तिलक ललाट पटल दुतिकारी । मानस

वा. 146 | 2 | ” “भाल विशाल तिलक झलकाहीं । मानस वा. 242 | 3 | ” “नासा तिलक को वरने पारा । मानस वा. 198 | 4 | ”

इसी परम्परा से आज तक अर्चाविग्रह में भी उर्ध्व-पुण्ड्र तिलक लगा रहता है । रामलीला आदि अभिनयों में राम वनने वाले या इनके पक्षवाले तिलक लगाते हैं । ये सब तो भगवान् श्री रामचन्द्र में बाह्य भागवत लक्षण स्पष्ट ही है । आभ्यान्तर लक्षण भी सद्ग्रन्थों में वर्णित है ।

रामोऽपि भ्रातृभिस्सार्धं पालयामास मेदिनीम् । यमादिगुणसम्पन्नः सर्वभोगविवर्जितः । ।

अर्चन्तस्सततं विष्णुमनादिनिधनं हरिम् । ब्रह्मचरोपरोनित्यं शसास पृथिवीं नृपः । पद्म पु. उत्तर 244 | 7-8 |

इक्ष्वाकुकुल के साधारण धर्म का वर्णन रामायण में इस प्रकार पाया जाता है ।

राजर्षिणा गुणाश्रेष्ठाः तपसा वर्षिभिस्समः । अहिंसारतिरुद्धो वृत्तिः सत्यपराक्रमः । ।

मुख्यश्चेक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवॉलक्ष्मीवर्धनः ।

इस प्रकार के सद्ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्र जी कुलधर्म, स्वभाव, अन्तरंग एवं बाह्ययाचरणों से ज्ञात होता है कि हृदयहीनता, निष्ठुरता, हिंसादि क्रूरकर्मों से घृणा करते थे, वंचित थे वल्कि “गुणानामाकरो महान्....” कल्याणकर गुणों के आकर थे । एतद्विषयक ही महर्षि वाल्मीकि का प्रश्न नारद से हुआ था-

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्चवीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः । ।

चारित्र्येण च को यक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः । ।

आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः । कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे । वा. रा. बाल 1 | 2-4 |

1. गुणवान्, 2. शक्तिशाली, 3. धर्मज्ञ, 4. कृतज्ञ, 5. सत्यवाक्, 6. दृढव्रत, 7. चारित्रवान्, 8. सर्वभूतहित परायण, 9. विद्वान्, 10. समर्थ, 11. प्रियदर्शनीय, 12. धैर्यवान्, 13. जितक्रोध, 14. तेजस्वी, 15. ईर्ष्याशून्य, 16. आवश्यकतायां देवानामपि भयदायक इत्यादि गुण सम्पन्न इस ब्रह्माण्ड में कौन है ? उत्तर में नारद ने यही कहा कि -

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी । वा. रा. बाल 1 | 8 |

इक्ष्वाकुवंश में अवतरित भगवान् श्रीरामचन्द्र ही एक सर्वगुण सम्पन्न हैं । उक्त प्रसंग में इन सभी गुणों में से धर्मज्ञ, सत्यवाक्, दृढव्रत और सर्वभूतहितपरायण - इन चार गुणों को लेकर दूषणोद्धार करना चाहिए । ताड़का, सुबाहु, रावण आदि आसुरी वृत्तिवाले की हिंसा में धर्म की स्थापना, अधर्म का नाश एवं सन्तों की रक्षा का तात्पर्य निहित है । आततायियों के वध से धर्म की रक्षा होती है । इसलिए मनु की आज्ञा है -

“गुरुं बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तन्तं हन्यादविचारयन् । ।”

ये सभी आततायी हैं -

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारापहर्ता च षडेते ह्याततायिनः । ।

सदापान रता ये च सदा काम रतास्तथा । सदा द्युतक्रियासक्ताः सदा सद्ब्रज्वनप्रियाः । ।

सदा पैशुन्यसक्ताश्च सदा मांसप्रिया अपि । शास्त्रज्ञा अपि लोकेऽस्मिंश्च एते त्वाततायिनः । ।

यही भाव “पावन मृग मारहि जिय जानी । मानस बाल 204 | 1 | ” यहाँ पर भी समझना चाहिए । पावन वाच्य श्री रामचन्द्र जी (पवनः पावनोऽनलः- विष्णुसहस्रनाम) हिंसक क्रूर जन्तुओं की रक्षा के लिए मारते हैं । मृग सभी जंगली जन्तुओं को कहते हैं । “ननन्द रामो मृगपक्षि जुष्टाम्जहौ च दुःख पुर विप्रवासात् ।” श्री रामचन्द्र जी से मृग, पक्षियाँ सभी प्रेम करते थे, अतएव वनवास का दुःख नगण्य हो गया था । “हित अनहित पशु पक्षिउ जाना । मानस अयो. 263 | 2 | ” “बाधक बधिक विलोकि पराही । मानस अयो. 263 | 2 | ” पशु-पक्षियों का प्रेम सिद्ध करते हैं कि भगवान् श्रीराम जी हिंसक नहीं थे । वन-गमन काल में वृक्षादि जड़ वस्तुयें भी मुरझा गयी थीं -

विषये ते महाराज रामव्यसन कर्षिताः । अपि वृक्षाः परिस्तानाः पुष्पांकुर कोरकाः । ।

उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च । वृक्षाश्च तान्तिमलभन्त भवद्वियोगे । वा. रा. अयो. 59 | 4 5 |

चित्रकूट के वृक्षादि - “सब फल फलै राम हित लागी । ऋतु अनऋतु काल गति त्यागी । मानस लंका 4 | 3 | ” “सरिता सर गिरि औघट घाटा । पति पहिचानी देहि वर बाटा । मानस अर. 6 | 2 | ” एकजड़ वस्तु जब भगवान् को पहचान कर उनसे प्रेम करती है तो चैतन्यों का तो

कहना ही क्या है। और, प्रेम करने वाले जीवों की मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् कैसे हिंसा कर सकते हैं ? यह असंभव है। भगवान् लोकप्रिय हैं। अब रहा मांस भक्षण का प्रश्न। यहाँ यह सोचना चाहिए यदि महर्षि वाल्मीकि मांस की विधि लिखते हैं तो स्वयं व्याधवृत्ति छोड़कर उत्कट तपस्वी क्यों बन गये ? यहाँ तक कि बहुकाल पर्यन्त हवा पीना भी बन्द कर समाधि लगाये जिसके कारण शरीर में दीमक लग गया। इसी वल्मीक से निकलने के कारण वाल्मीकि भी कहाए। इनका हृदय करुणापूर्ण है। यहाँ तक कि हिंसावृत्ति वाला व्याधा को शाप दे छोड़े - “मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः। वा. रा. बाल 2।15।”

इनके सम्मान में ब्रह्मादि देव विना बुलाये अपने-आप आ मिले। यदि ये सभी बातें महर्षि में सत्य हैं तो वाल्मीकि रामायण पढ़ने वाले कुछलोग इस रामायण से मांस भक्षण को प्रमाणित करने का दुःसाहस करते हैं तो वे किसी सद्गुरु से जाकर इसका अर्थ पढ़ें तो उन्हें पता चलेगा कि हम कितने अथाह अज्ञान के गर्त में पड़े थे। भगवान् श्री रामचन्द्र जी मांस-भक्षी थे यह कहने वाले टीकाकार पूर्वापर प्रसंग छोड़कर ही अर्थ को अनर्थ कर डालते हैं। वन-गमन काल में श्री राम जी की प्रतिज्ञा को वाल्मीकि जी लिखते हैं-

“वनवास वसन्नेव शुचिर्नियत भोजनः। मूलैः पुष्पैः फलैः पुण्यैः पितृन् देवांश्च तर्पयन्। वा. रा. अयो. 109।26।

फलानि मूलानि च भक्षयन् वने। वा. रा. अयो. 34।59।”

वनवास काल में मैं पवित्राचरण से रहते हुए कन्द-मूल फलादि भगवान् को भोग लगाकर उसी से पितृ देवताओं को तृप्त करूँगा। कैकेयी की आज्ञा भी इसी प्रकार की है - “वीराजिन जटाधारी रामो भवतु तापसः। वा. रा. अयो. 11।26।” राम तपस्वी होकर वन में रहें। कैकेयी के वचनानुसार तपस्वी बनना और मांस भी खाना - ये दोनों विरोधात्मक विषय हैं, यह कैसे हो सकता है।

श्री राम जी का वचन - “विद्धि मां ऋषिभिस्तुल्यम्। वा. रा. अयो. 19।20।” “आसेवमानो वन्यानि फलं मूलैश्च वर्तयन्। वा. रा. अयो. 20।31।” “मधुमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामि पम्। वा. रा. अयो. 20।29।”

भगवान् श्री राम जी ने मुनि तुल्य रहने के लिए कहा है। मुनियों की जीवनचर्या यह है -

वैषानसा वालखिल्याः सम्प्रक्षाला मरीचिपाः। अश्म कुहाश्च वहवः पत्राहाराश्च धार्मिकाः।।

मुनयः सलिलाहाराः वायुभक्षास्तथा परे। आकाश निलयाश्चैवं तथैवाभावकाशकाः।।

वैखानस (ब्रह्मा से उत्पन्न), वालखिल्य (ब्रह्मा द्वारा वाला से उत्पन्न), सम्प्रक्षाल (ब्रह्मा के पादधोवन से उत्पन्न), मरीचिप (चन्द्र-सूर्य किरणों को पीकर रहने वाले), अश्मकूट (पथर में कच्चा अन्न कूटकर खाने वाले), पत्राहार करने वाले, सलिलाहार करने वाले, वायु पीकर रहने वाले, खुले आकाश में रहने वाले, स्थण्डिलशायी (भूमि लीपकर सोने वाले) इत्यादि वृत्तिवान् ऋषि मुनि होते हैं। मुनि शब्द का अर्थ मननशील है। ऐसे मुनियों के समान रहते हुए भगवान् श्री रामचन्द्र जी मांस भक्षी कैसे हो सकते हैं। पिता श्री दशरथ जी के श्राद्ध के समय उपस्थित होने पर -

“ऐङ्गुदं वदरीमिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे। वा. रा. अयो. 102।29।” इंगुदी बैर के चूर्ण से पिण्ड दिए हैं। क्योंकि - “यदन्नः पुरुषो भवति तदान्नास्तस्य देवताः। वा. रा. अयो. का 102।30।”

जो व्यक्ति जिस वस्तु को खाता है वही वस्तु अपने इष्ट देवों को देता है। यदि श्री राम जी मांस खाते तो अपनी प्रिय वस्तु समझ कर पिता को पिण्ड भी मांस से देते किन्तु ऐसा नहीं किया है। यदि श्री राम जी मांस भक्षी होते तो उनके भक्त भी घण्टाकर्ण के समान आज ठाकुरवाड़ी में ठाकुर जी को मांस अवश्य निवेदन करते किन्तु ऐसा कहीं भी देखने में नहीं आता है। कोई भी वस्तु भगवान् को अर्पण किए बिना खाना मना है। श्री राम जी श्री वैष्णव होने के सम्बन्ध से सभी वस्तु भगवान् को भोग लगाकर ही खाते थे। बिना भगवान् को भोग लगाये खाना पाप है - “भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्। गी. 3।13।”

भगवान् को निवेदनीय वस्तु में मांस नहीं है और मांस भी लगाने की कहीं विधि भी नहीं है। प्राकृत मनुष्य वाला गुण-दोष उनमें नहीं लग सकता है। 1। प्राकृत मनुष्य में स्वभावतः दोष या गुण होता है - “स्वभावस्तु प्रवर्तते।” 2। किसी व्यक्ति में कुलधर्म का भी प्रभाव पड़ता है - “नोल्लङ्घनीय कुलदेश धर्मः।” 3। किसी मनुष्य में संसर्गवश दोष गुण आता है - “सत्सङ्गेन हि

दैतेयाः।” 4। किसी मनुष्य में जन्मान्तर का संस्कार रहता है - “पूर्वाभ्यासेन तेनैव।” जैसे जड़भरत को पूर्वजन्म का संस्कार बना था। 5। किसी व्यक्ति में स्वाभाविक जाति वैर बना रहता है। ये सभी गुणदोष प्राकृत पुरुष में होते हैं। ईश्वर में नहीं। ईश्वर प्राकृत नहीं है - “न तस्य प्राकृतिर्मूर्तिमांसमेदोस्थिसंभवम्।” “जन्म कर्मज्व मे दिव्यम्। गी 4।9।”

इन हेतुओं से भी भगवान् श्री रामचन्द्र जी में प्राकृत पुरुषों का नित्य नैमित्तिक या सांसारिक दोषारोपण नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार भगवान् के अवतार हेतु कुलधर्म (श्री वैष्णव धर्म) का पालन, कैकेयी की आज्ञानुकूल वनवास, वानप्रस्थाश्रम का कर्तव्य, मुनि तुल्य वनवास जीवन विताने का संकल्प, मर्यादा पुरुषोत्तम होने के कारण लोक संग्रहार्थ सर्व व्यवहार “रामो द्विर्नाभिभाषते। वा रा अयो 18।30।” इत्यादि वचनों का पालन आदि विषयों पर ध्यान देने से भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का मांस भक्षण कभी भी नहीं सिद्ध होता है।

हाँ, “यदि तुष्यन्तु दुर्जनन्याय” से कुछ क्षणों के लिए उक्त आक्षेप को मान भी लिया जाय तो उनको ईश्वर होने के सम्बन्ध से कर्त्तापन का कोई भी दोष उन्हें नहीं लगता - “न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्म फले स्पृहा। इति मां योऽभिजानाति कर्मभिः न स बध्यते। गी 4।14।” भगवान् को कर्मबन्धन नहीं बाँधता ऐसा जानने वाला मुक्त हो जाता है। अन्यथा नरक भोगना पड़ता है। ईश्वर अघटित घटना सामर्थ्यवान् है, अतः संसार से निर्लिप्त रहते हैं। ईश्वर का किया हुआ करने का आदेश हम सबों को नहीं है वल्कि - “ईश्वरस्य वचः पश्यम्।” ईश्वर का कहा हुआ करने से कल्याण होता है। “न देवचरितं चरेत्।” यदि कोई दुर्भावना के कारण ईश्वर में दोष लगाता है तो समझना चाहिए कि उसके ऊपर भगवान् की कृपा ही नहीं है, इसलिए उसे ऐसा करना सूझता है। ईश्वरीय कृपा द्वारा ही दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है। “दिव्यं ददामि ते चक्षुः। गी 11।8।” “यः पश्यति स पश्यति। गी 5।5, 13।28।” उनकी कृपा बिना “पश्यन्पि न पश्यति।” “तुम्हरी कृपा पाव कोई कोई। मानस किष्क. 20।3।” “सो जानई जेहि देहु जनाई। जानत तुमही तुमही होइ जाई। मानस अयो. 126।2।” अतएव शुद्ध सात्त्विक ज्ञान के लिए ईश्वर की कृपा ही परमोपाय है।

उक्त विषयों का ध्यान में रखकर यदि पाठकगण श्रीवाल्मीकि रामायण का अध्ययन, मनन करेंगे तो उन्हें स्वतः दिव्यलोक का भास होगा जिससे अज्ञान-तम विनष्ट होगा यथार्थ ज्ञान द्वारा कल्याण-भागी बनेंगे जिससे लोकसंग्रह भी होगा।

1। “मधुमूलफलैर्जीवन्हित्वा मुनिवदामिषम्। भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति। वा रा अयो 20।29।” वनगमन के पूर्व भगवान् श्रीरामचन्द्र जी प्रतिज्ञा बोधक यह श्लोक है। श्री रामचन्द्र जी अपनी माँ कौशल्या से प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि मैं राजभोग भोजन सुखादि छोड़कर ऋषि मुनियों के तुल्य कन्दमूल, फलादि द्वारा जीवन निर्वाह करते हुए वन में रहूँगा। महाराज श्री दशरथ जी ने भरत जी को युवराज पद दिया है। यहाँ आमिष शब्द से राजोचित भोग जानना चाहिए -

आकर्षणेऽपि पुंसि स्यात् आमिषं पुं नपुंसकम्। भोग्य वस्तूनि संभोगेऽप्युक्तोचे पललेऽपि च।

तां तदा दर्शयित्वा तु मैथिलीं गिरि निम्नगाम्। निष्णां तां गिरिप्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन्।।

इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना। एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः। वा रा अयो 96।1।2।

धर्मात्मा राघवः सीतां मांसेन छन्दयन् आस्ते - धर्मात्मा को मांस भक्षण की संभावना कैसे हो सकती है, अतः मांस से फल का सार भाग समझना चाहिए।

2। सुराघट सहस्रेण मांसभूतौदनेन च। यक्ष्ये त्वां प्रयतां देवि पुरीं पुनरुपागता। वा रा अयो का 52।89।

वन जाते समय गंगा तट पर पहुँचने पर श्री जानकी जी गंगा से प्रार्थना करती हैं कि हे गंगा देवि ! हम सब सकुशल वन से अयोध्या लौट आवेंगे तो आपकी एक सहस्र घट पञ्चामृत या देवदुर्लभ भगवत्प्रसाद और मांसभूतौदन (तिल, लावा, दही, यव और हरिद्रा मिश्रित भात) से करेंगे। यहाँ सुरा शब्द से पंचामृत ग्रहण करना चाहिए क्योंकि पूजक और पूज्य दोनों ही शुद्ध सात्त्विक प्रकृति के हैं। सुरा - सु उपसर्ग रा आस्वादने धातु से सुष्ठु आस्वदते, इस विग्रह द्वारा सुरा शब्द की सिद्धि हुई है। अतः इसका अर्थ पंचामृत हुआ। अथवा, सुराघटसहस्रेण - सुराणामघटः अप्राप्यः, अर्थात् देवदुर्लभ जो भगवत्प्रसाद वह 'सुराघट' का अर्थ होगा क्योंकि हारीत

वचन - “विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् । पितृभ्यश्चैव तद्देयं तदनन्ताय कल्पते ।” विष्णु निवेदित वस्तु से ही देवतान्तरों की पूजा करे । भगवत्प्रसाद देवताओं को अलभ्य है ।

“तिल लाजा दधि यव हरिद्रायुक्त ओदनम् । भूतौदनं सु सम्प्रोक्त गुणाः सर्वे पदार्थवत् । वैद्यक शब्द सिन्धु ।”

अथवा मांस भौम - भूमि समुत्पन्नं कन्दमूलादिकम् । ब्रह्मसूत्र 2।4।21 । न मांस भूमिका जायं न मांसं तृणवृक्षयोः । रजवीर्यं समुत्पन्नं तन्मे मांसं विवर्जयेत् । ।

“मांसोक्ते पौष्टिक ग्राह्यम् । मरीचि संहितायाम् ।” मांस शब्द से ग्रन्थों में फल का गुदा (सार) या छिलका पुष्टिकारक ग्राह्य अंग माना गया है । “पूतनास्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलामृता । भाव प्रकाश ।”

3। यहाँ से आगे चलकर जब यमुना के तट पर श्रीरामचन्द्र जी पहुँचते हैं तो वहाँ भी श्रीजानकी जी यमुना से प्रार्थना करती हैं कि “स्वस्ति देवि त्रामि त्वां पारयेत्मे पतिव्रतम् । यक्ष्ये त्वां गो सहस्रेण सुराघटशतेन च । वा रा अयो 55।20 ।” हे यमुना देवि ! यदि मेरे पति का व्रत याने वनवासनिर्विघ्न पूरा हो जायेगा तो मैं आपको एक सहस्र गोदान एक शत घड़ा पंचामृत से पूजा करूँगी ।

4। कोशमात्रं ततो गत्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । वहून्मेध्यान्मृगान्हत्वा चेरतुर्यमुनावने । वा रा अयो 55।32 । एक कोस चलकर श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण के साथ यमुना तीरवर्ती वन में गजकन्द भोजन किया । यहाँ पर मृग शब्द गजकन्द के लिए प्रयुक्त हुआ है । “मृगः पशौ कुरंगे गजे च” इति शब्दस्तोमः । इस स्थान में गज शब्द के उत्तर कन्द पद का लोप हो गया है । विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपो वाच्यः - महाभाष्य । वानप्रस्थियों को कन्दमूल का ही आहार करना बताया गया है । ‘हत्वा’ इस पद में ह जोड़ तु जोड़ आ ऐसा पदच्छेद है । ह और तु निश्चयार्थक है । आ उपसर्ग चेरतु क्रिया से सम्बद्ध है जो विधिपूर्वक भोजन का निर्देश करने के लिए सम्बद्ध हुआ है ।

5। ऐणेयं मांसमाहृत्य यक्ष्यामहे वयम् । कर्तव्यं वास्तु शमनं सौमित्रे चिरवासिभिः । वा रा अयो का 56।22 । यह श्लोक श्री रामचन्द्र जी ने पर्णशाला के शान्ति प्रसंग में श्री लक्ष्मण जी से कहा है - जिस गृह में अधिक दिन तक रहना हो उसमें रहनेवालों के मंगलार्थ वास्तुशान्ति करना चाहिए । अतः ऐणेयं (सुगन्धित द्रव्य विशेष) ऐणवासुके शब्द सिन्धौ वाराही कन्दः (निघन्तौ) । पलाकी शाक को भी ऐणेय कहते हैं । लाओ मुझे दो वास्तुदेवों को यजन करूँगा । विष्णु के प्रसाद से अथवा “नहि विष्णुः प्रणमति कस्मैचिद्विबुधादये ।” यहाँ पर गोवर्धन के बहाने अपनी पूजा करवाते हैं । “ऋते आत्मना क्वचित्” भगवान् अपनी आत्मा को छोड़कर देवताओं को प्रणामादिक नहीं करते । अतः वास्तुशमन प्रसंग में भगवान् अपनी पूजनार्थ ही उचित वस्तुओं को माँग रहे हैं न कि मृग वध की आज्ञा देते हैं ।

अथवा गृह प्रवेश काल में शुभ शकुन के लिए मृगं बच्चा ऐणेयं (एणी सुतं) को लाने कहते हैं दर्शनार्थ है, वधार्थ नहीं । पुनः अन्य “ऐणेयं श्रपयस्व एतत्शाला यक्ष्यामहे वयम् । त्वर सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो अपि अयम् । वा रा अयो 56।25 ।” पूर्वोक्त दश हेतुओं के दृष्टिकोण से जीव हत्या न करके कन्द ही अर्थ उचित है । श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी से कहते हैं कि वाराहकन्द का पाक करो, शाला यजन शीघ्र करें, यह शुभ समय है और स्थिर मुहूर्त भी है । “मृगं हत्वानय क्षिप्रं लक्ष्मेणह शुभेक्षण । वा रा अयो 56।23 ।” यहाँ पर मृग शब्द गजकन्द वाचक है । ह और तु शब्द निश्चयार्थक है । शुभेक्षण शब्द का प्रयोग लक्ष्मण जी के गजकन्द पहचानने के चातुर्य को लक्ष्य में रखकर किया गया है । “सलक्ष्मणः कृष्ण मृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान् । अथ चिक्षेप सौमित्रः समिद्धे जातवेदसि । वा रा अयो 56।26 ।” लक्ष्मण जी काला गजकन्द उखाड़ कर ले आये और पुनः आज्ञा पाकर उसको प्रज्वलित अग्नि में पकने के लिए दिये । “तं तु पक्वा समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम् । लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमथ राघवमब्रवीत् । वा रा अयो 56।27 ।” अग्नि में दिया हुआ गजकन्द या वाराहीकन्द जब पककर शुष्क रस वाला हो गया तब लक्ष्मण जी ने श्री राम जी से कहा । इस श्लोक में शोणित शब्द रसवाचक है । छिन्न शोणित का यह भी अर्थ है कि ‘छिन्नं विनष्टं भवति शोणितं रक्तविकारं येन सतं छिन्न शोणितम् । गजकन्द के सम्बन्ध में वैद्यक शास्त्र में लिखा मिलता है ‘त्वग्दोषादिः कुष्टहन्ता’ इति मदनपालः ।

“अयं कृष्णः समाप्तांगः श्रुतः कृष्णमृगो मया । देवतां देव संकाश यजस्व कुशलो ह्यसि । वा रा अयो 56।28 ।” समाप्तांगः सम्यक्भवन्ति

आप्तानि अंगानि येन सः समाप्तांगः अर्थात्लक्ष्मण जी कहते हैं कि सभी अंग स्वस्थ हो जाते हैं जिससे ऐसा काला छिलका वाला गजकन्द पककर प्रस्तुत है। आप यज्ञ के अधिकारी हैं यजन करें। यह चित्रकूट की पर्णशाला के यजन का प्रसंग है, यदि यहाँ मृगमांसादि की बलि का विधान होता तो पंचवटी में पुष्पबलि का विधान क्यों होता ? भगवान् श्री राम दशरथ के निमित्त इंगुदी के गुद्दे में बैर मिलाकर उसका पिण्ड तैयार कर राजा दशरथ को क्यों देते ? पिण्ड देते समय श्री राम ने यह कह कर प्रार्थना की है कि हमलोगों का जो आहार है उसी से पिण्ड दे रहा हूँ चूँकि शास्त्र का विधान है कि मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है वही उसके देवता भी ग्रहण करते हैं। पितरगण देवता ही होते ही हैं “ इदं भुञ्ज महाराज प्रीतो यदशना वयम् । यदन्नः पुरुषो भवति तदान्नास्तस्य देवताः । वा रा अयो 102 । 30 । ” इससे यही स्पष्ट होता है कि भगवान् श्री राम जी कन्दमूलादि का ही आहार करते थे। “ वन्यैर्माल्यैः फलमूलैः पक्वैर्मसैर्यथाविधि । अदभिजिपैश्च वेदोक्तैर्दमैश्च ससमित्कुशैः । वा रा अयो 56 । 34 । ” भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने फूलमालाओं, फूलों, कन्दमूलों, फलों, पक्वफलों के भीतर का सार जैसे केला इत्यादि, जल, वैदिक मन्त्रों का जप, कुश, समिधा आदि से वास्तुदेवों को तृप्त किये। “ फलस्यान्तरैः सारैः । ” मांस से फल का भीतर और बाहर का सार भाग ग्रहण किया गया है।

6 । “ तिष्ठन्तु सर्वे दाशाश्च गंगामन्वाश्रितां नदीम् । वलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः । वा रा अयो 84 । 7 । ” श्री रामचन्द्र जी को वन से लौटाने के लिए ससैन्य भरत जी को जाते देखकर निषादराज अपनी सेनाओं को सचेत करते हुए कहते हैं कि हे सैनिकों ! पुष्टिकारक कन्द मूल फलादि खाते हुए गंगा के किनारे के घाटों की रक्षा करते रहो। “ इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांससमधूनि च । अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः । वा रा अयो 84 । 10 । ” निषादराज अपने सैनिक को सचेत कर स्वयं भरतजी के उपहारार्थ सोमरस, कन्द, अन्यान्य श्रमहारी पुष्परसों को लेकर भरत जी से मिलने चला। यहाँ पर मत्स्य शब्द सोमलता का वाचक है जिसका रस श्रमहारक होता है। “ अस्ति मूलं फलं चैव निषादैः समुपाहृतम् । आर्द्र मांसं च शुष्कं च अन्य चोच्चावचं महत् । वा रा अयो 84 । 17 । ” निषादराज भरत जी से कहता है कि निषादों के द्वारा लाया हुआ आर्द्र एवं शुष्क कन्द मूल फल अन्य वर्ण्य भोजन सामग्री प्रस्तुत है। आप सबों को स्वीकार करें। यहाँ मांस शब्द राजभोग का भी द्योतक है। भरत जी राजा हैं और निषादराज प्रजा है। राजा का उपहार राजा के योग्य ही होना चाहिए। ‘तस पूजा चाहिए जस देवता।’

7 । “ अन्याः श्रवन्तु मैरेयं सुरामन्यामुनिष्ठताम् । अपराश्चोदकं शीतमिक्षु काण्ड रसोपमम् । वा रा अयो 91 । 15 । ” श्री भरत जी के स्वागातार्थ भरद्वाज ऋषि पृथ्वी के सभी नदियों के आवाहन के क्रम में कहते हैं कि कुछ नदियाँ यहाँ आकर द्राक्षा एवं धावा पुष्प रसमिश्रित उत्तम पेय, कुछ नदियाँ उत्तम विहित पंचामृत तथा कुछ नदियाँ इक्षु रस के तुल्य समधुर शीत जल बहावें। यहाँ मैरेय शब्द धूप में सन्धानित द्राक्षारस और धावा के पुष्परस का वाचक है न कि मदिरावाचक क्योंकि स्वागतकर्त्ता और स्वागतगृहीता दोनों में से कोई भी नहीं मदिरा के उपासक हैं। “ विचित्राणि च माल्याणि पादप्रच्युतानि च । सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानि च । वा रा अयो 91 । 21 । ” भरद्वाज जी चन्द्र से कहते हैं कि नवीन पुष्पों को विचित्र माला एवं सुस्वादु पेय पंचामृत तथा उत्तमोत्तम राजभोग शीघ्र प्रस्तुत करें। “ प्रमदाविग्रहं कृत्वा भरद्वाजाश्रमेऽवसन् । सुरां सुरापाः पिवत पायसञ्च बुभुक्षिताः । वा रा अयो 91 । 51 । 52 । ” भरद्वाज जी के आश्रम में स्त्री रूप धारण कर आये हुए उस वन के वृक्षादि समागत अतिथियों को भोजन पानादि का स्वागत करते हुए कहते हैं कि हे अतिथिगण पंचामृत पीनेवाले पंचामृत पीवे और भूखे लोग खीर खाते जायें। यहाँ सुरा शब्द पंचामृत वाचक है। “ मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यावदिच्छथ । वा रा अयो 91 । 52 । ” सुपक्व सुन्दर पवित्र फलों को या राजभोगों को लोग इच्छा भर खाते जावें। “ रजसाध्वस्त केशो वा नरः कश्चिददृश्यत । आजैश्चापि वाराहैर्निष्ठानवर संचयैः । वा रा अयो 91 । 66 । 67 । ” समागत अतिथियों में धूल धूसरित केश वाला कोई नहीं था। सबों के लिए आजैः अज संज्ञानि बीजानि (पिस्ता, अखरोट, मूँगफली, चिरौंजी और मेवा आदि) अजएव आजः तैः संस्कृत भोज्य वस्तुभिः । वाराहैः वाराहीकन्द मिश्रितैः अथवा वाराह कसेरू मूल विशेष्य संज्ञा तैः संस्कृत भोज्यवस्तुभिः, अवर निष्ठानसंचयैः अन्य विविध प्रकारक व्यञ्जनैः परिपूर्ण अन्नागारमासीत् । यं दृष्ट्वा सर्वे चकिताः आसन् । अथवा आजैः अजस्य विकारे जातम आजं घृतं, तैः संस्कृत वस्तुभिः । आजं घृतमायुं स्थापकं क्षयादि रोगहरं कटुतिक्त रसायनम् । वकरी का घी कटुतिक्त रसायन

आयु को बढ़ाने वाला है। इसीलिए इसी घी से संस्कृत वस्तु भी बनायी गयी होगी। इस प्रकार की वस्तु बनायी गयी थी यह उचित अर्थ है न कि शूकर बकरी का मांस।

“ताश्च काम दुधा गावो दुमाश्चासनमधुच्युतः। वाप्ये भैरेय पूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः।।

प्रतप्त पिठैश्चापि मार्गमायूर कौक्कुटैः। पत्रीणां सहस्राणि स्थालीनां नियुतानि च।। वा रा अयो 91।76 71।”

भरद्वाज ऋषि के आश्रम की गायें सभी प्रकार की अभिलषित वस्तुओं को देने वाली हो गयी थीं। सभी वृक्ष उत्तम पेय स्रावी हो गये थे। सभी वापियाँ उत्तम सुस्वादु द्राक्षारस से भरी थीं। पक्व सुन्दर सुस्वादों फलों के ढेर लगे थे। कस्तूरी मयूरशिखा नामक औषध विशेष नागर मोथादि के रस चूर्ण मिश्रित सुस्वादु भोजन सामग्री से असंख्यों पात्र भरे थे। यहाँ मार्ग शब्द से मृग विकार कस्तूरी, मायूर शब्द से मयूरशिखा औषधि विशेष, कौक्कुट शब्द से काकोली, क्षीरकोली अत्यन्त पौष्टिक या स्वागत सामान का ग्रहण करना चाहिए। “तथैव मत्ता मदिरोकटा नरास्तथैव दिव्यागरूचन्दनोक्षिताः। अयो 91।84।” नराः (नलाः) स्योनाक वृक्षः (सोना पाठेति प्रसिद्धः) शीत कषाय मधुर रुचिकरः रक्तपित्तघ्नः दीपनः बलप्रदश्च। मत्ता सीतोपल मिश्री इति प्रसिद्धः। भरद्वाज जी के आश्रम से सभी स्वागत कर्त्ताओं को चले जाने पर भी भरत पक्ष के लोग भरद्वाज के दिए उत्तमोत्तम कन्द मूल फलादि द्राक्षादि पेय रसों का पान कर हर्ष पुष्ट सानन्द प्रतीत होते थे।

। 8। “तां तथा दर्शयित्वा तु मैथिली गिरि निम्नगाम्। निषसाद गिरि प्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन्।।

इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना। एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः।। वा रा अयो 96।1 तथा 2।”

मांस शब्देन पौष्टिकम् (भूमि समुत्पन्न विदारीकन्द, वराहीकन्द, मिश्रीकन्द, रतालु, सेमलकन्द, श्वेतमुसली, श्याममुसली आदि) ग्राह्यम्। भगवान् श्री रामचन्द्र जी श्री जानकी जी को मन्दाकिनी की शोभा दिखाकर पर्वत के एक शिला पर बैठ गये और उनका पकाया कन्दादिकों की प्रशंसा करते हुए यह कहते हैं कि यह सुपक्व है, सुस्वादु है, अति पवित्र रुचिकर है, इत्यादि उनके पाकक्रिया के प्रशंसा द्योतक वाक्यों द्वारा उन्हें प्रसन्न किए। अर्थात् अरण्यवास का दुःख से वे दुःखी न हों, अतः वे ऐसा किये थे। इस श्लोक में एकतरफ भगवान् श्री रामचन्द्र जी को धर्मात्मा विशेषण दिया गया दूसरी ओर मांस शब्द दिया गया है। यदि यह मांस से जीव का मांस समझा जाये तो कितना घोर विरोध होगा जो निस्सीम है। भगवान् की प्रतिज्ञा है “मूलैः पुष्पैः फलैः पुण्यैः पितृदेवांश्च तर्पयन्।” फल मूल पुष्प आदि से देवताओं के पूजन कर स्वयं ग्रहण करेंगे। इनका इष्टदेव रंगनाथ भगवान् हैं। “हिंसाभिरभिवर्जितः।” सम्पूर्ण अयोध्यावासियों के लिए हिंसारहित होना लिखा है।

9। “पायसं कृशं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः। गुरुंश्चाप्यवजानातु यस्यार्योऽनुमते गतः। वा रा अयो 75।30।” इस श्लोक में छाग से निर्मल वृक्ष किटाणुनाशक तुलसी इत्यादि का ग्रहण है। भरत जी कहते हैं कि श्री रामचन्द्र जी जिसकी अनुमति से वन आये हैं उसे वह पाप लगे जो भगवान् भागवत को अर्पण किये विना खीर, खिचड़ी, तुलसी की मंजरी, पत्ती आदि को खाने वाले को लगता है।

10। “न मांसं राघवो भुंक्ते न चापि मधुसेवते। वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पंचमम्। वा रा सुन्दर 36।41।” राघवः मांसं वने सुग्रीव संसर्गेण प्राप्त राजभोगं मांसाय, इदं मांसं मांसं वृद्धयर्थं पष्टि कर भोजनं वा न भुंक्ते। न चापि मधुं क्षौद्रं, सेवते पिवतीत्यर्थः। अपि तु वन्यं कन्दमूलादिकमसुविहितं प्रतिज्ञानुरूपं, भक्तं भूपतये नमः भुवनपतये नमः, भूतानां पतये नमः, पंचवायवे नमः, अनेन प्रकारेण विभक्तः प्राणधारणमात्रं वा नित्यं प्रतिदिनमपंचमं पंच प्रहरे अश्नाति। यह श्लोक सुन्दरकाण्ड का हनुमान और श्री जानकी जी के कुशल प्रश्नोत्तर प्रसंग का है। श्री जानकी जी श्री हनुमान जी से पूछती हैं कच्चिन्न विगत स्नेहः विवासान्मयि राघवः। वा रा सुन्दर 36।20।” भगवान् श्री रामचन्द्र जी मुझे लंका में चले आने के कारण अप्रसन्न हो मुझको कहीं भूल तो नहीं गये हैं? इसके उत्तर में हनुमान जी कहते हैं कि भगवान् श्री रामचन्द्र जी मर्यादा पुरुषोत्तम सहृदय कृतज्ञ दीनबन्धु हैं इसलिए आपको भूल नहीं सकते क्योंकि अपने सहृदय व्यक्तियों को भूलना मद्य मांसादि खाने वाले अशिष्टों का काम है। भगवान् तो आपके वियोग में पौष्टिक पदार्थ राजभोग, मधु, पुष्परस आदि भी छोड़कर वन के कन्दमूल को दिन के पंचम पर में खाते हैं। यही उनका प्रतिदिन का नियम है।

श्रीमते रामानुजाय नमः



उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण

रचयिता
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य
सरौती
पो अरवल(गया)

प्रथम संस्करण - 1000

सम्बत्- 2018

प्रकाशक मुद्रक
श्रीभूनेश्वर प्रसाद सिंह
ग्राम - पो - नगवाँ
नौवतपुर(पटना)

त्रिमूर्ति प्रेस
खर्जाची रोड
पटना - 4

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रुतेनतपसावा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः ।
 बुद्ध्या वा किं निपुणवा बलेनेन्द्रिय राधसा । । भा स्क 4 । 31 । 11
 किं वा योगेन सांख्येन न्यास स्वाध्याययोरपि ।
 किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः । । भा स्क 4 । 31 । 12
 श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ।
 सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः । । भा स्क 4 । 31 । 13
 नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलनिरञ्जनम् ।
 कुतः पुनः शश्वद भद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् । । भा स्क 1 । 5 । 12

शास्त्र ज्ञान से, तप से, वचन की चतुराई से, चित्त की शुद्धवृत्ति से, बुद्धि से, बल से, इन्द्रियों की पटुता से, शरीर आत्मा के विवेक से, संन्यास और वेदाध्ययन से, व्रत वैराग्य आदि अन्य कल्याण साधनों से भी पुरुष को क्या लाभ ? अर्थात् कुछ भी नहीं। वास्तव में समस्त कल्याणों की अवधि भगवान की प्राप्ति है। भगवान की भक्ति विना निर्मल ज्ञान की भी शोभा नहीं है। किन्तु भगवान की कृपा विना भक्ति नहीं मिलती है। यथा-

जन्मान्तर सहस्रेषु बुद्धिया भाविता नृणाम् ।
 तामेव लभते जन्तुरूपदेशो निरर्थकः । । 1 । ।
 प्रकाशयतुमात्मानं भक्तानां हितकाम्यया ।
 अवतीर्णो जगन्नाथ शास्त्ररूपेणैव प्रभुः । । 2 । ।
 तस्माच्छास्त्रे दृढंकार्या भात्ये मोक्ष परायणैः ।
 अभक्तस्य परे शास्त्रे भगवान्न प्रकाशते । । 3 । ।

अनेक जन्मों के संस्कार से मनुष्यों को बुद्धि जिस ओर जाती है वे वैसे ही भाव को प्राप्त करते हैं। कुसंस्कार के कारण उनके प्रति किये गये सदुपदेश भी व्यर्थ हो जाते हैं। भक्तों की हित कामना के लिये तथा भक्तों के स्वरूपज्ञान के लिये शास्त्ररूप से भगवान अवतार लिये हैं। अर्थात् भगवान की कृपा ही से सदशास्त्रों में पूर्ण विश्वास होता है। इससे मुमुक्षुओं को भगवान शास्त्र में दृढ़ विश्वास कराते हैं। पर अभक्तों के हृदय में शास्त्र का विश्वास नहीं होता है।

ये ही सर आवत अतिकठिनाई । राम कृपा विनु आइ न जाई । । मानस वा का 37 । 3

उन सदशास्त्रों में उर्ध्वपुण्ड्र तिलक का विधान है।

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः परमशितारमनारायणं सांख्ययोगाधिगम्यम् ।

ज्ञात्वा विमुच्यते नरः समस्तैः संसार पाशैरिह चैव विष्णुः । । महोपनिषत्

मनुष्य उर्ध्वपुण्ड्र धारण कर सांख्यादि शास्त्र द्वारा जानने योग्य तथा सर्वजीवों को अपने अधिकार में रखनेवाले नारायण को जानकर संसार बन्धन से छूट जाता है।

अर्चनाङ्गं बवीत्यन्या उर्ध्वपुण्ड्रं तथा श्रुतिः । नारद संहिता

उर्ध्वपुण्ड्र भगवत अर्चना का अंग है। श्रुति कहती है।

अर्चनादौ यज्ञमूर्तेरुर्ध्वपुण्ड्रमित्यारभ्य । । भल्ल शाखा

उर्ध्वपुण्ड्र धारण कर यज्ञमूर्ति भगवान की अर्चना करे।

हरे : पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्येच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयते ।

स परस्य प्रियो भवति, स पुण्यवान्भवति, स मुक्तिमान्भवति । महोपनिषत्

जो मनुष्य आत्मकल्याण के लिये भगवान के चरणाकार मध्य में अवकाशयुक्त श्रीचूर्ण उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं वे परमात्मा के प्रिय भक्तिमान और मुक्तिमान होते हैं ।

होम पूजादि समये सायं प्रातः समाहितः ।

उर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रो भवेच्छुद्धो न चान्यथा । । बोधायन

ब्राह्मण प्रथम उर्ध्वपुण्ड्र करके सावधान हो सुबह शाम संध्यावन्दन होम पूजादि करने से शुद्ध होता है । अन्यथा नहीं ।

ममार्चने विशेषेण उर्ध्वपुण्ड्रधरो द्विजः ।

कुलं तारयते सप्त स गच्छेत्समतां मम । । ब्रह्मरात्रे

जो ब्राह्मण उर्ध्वपुण्ड्र धारण कर हमारी पूजा करते हैं वे सात कुल को तारकर हमारी समता को प्राप्त करते हैं ।

पिशाच भूतवैताला कुष्माण्डाद्या महागणाः ।

अस्यान्तिके न तिष्ठन्ति वैष्णवस्य महात्मनः । । ब्रह्माण्डे

उर्ध्वपुण्ड्रधारी श्रीवैष्णव के समीप भूत पिशाच वैताल और कुष्माण्ड नहीं आते । अर्थात् उन्हें इनका भय नहीं होता है ।

उपवीतं शिखाबन्धमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ।

अपवित्रकरं कर्म विप्रस्य विफल भवेत् । । विष्णु स्मृति

जनेउ शिखा उर्ध्वपुण्ड्र तिलक के विना ब्राह्मण के सब शुभकर्म निष्फल हो जाते हैं ।

स्नात्वा ललाट तिलकं मृदा कुर्यादतन्द्रितः ।

पाषण्ड पतितादीना दर्शनस्यापनुतये । । दक्ष स्मृति

स्नान कर सफेद मिट्टी का तिलक लगावे । तिलक धारण करने से पाषण्ड और पतितों के देखने का दोष नहीं लगता है ।

स्वाध्याये भोजने चैव होम मंगल कर्मणि ।

उर्ध्वपुण्ड्रधरो नित्यं राक्षसाञ्चापनुतये । । भार्गव संहिता

वेदाध्ययन भोजन होम और मांगलिक कर्म उर्ध्वपुण्ड्र धारण कर नित्य करे ।

यज्ञो दानं तपो होमो भोजनं पितृतर्पणम् ।

सर्वे भवन्ति विफला उर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् । । भार्गव संहिता

यज्ञ दान तप हवन भोजन और पितृतर्पण सब कर्म तिलक धारण किये विना निष्फल हो जाते हैं ।

रक्षार्थमघनाशार्थं मंगलार्थं च भामिनि ।

धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रन्तु शिरसाहर्निशं सदा । । वामन पुराण

स्वरक्षार्थ पापनाशार्थ तथा मंगलार्थ सदा दिनरात सिर पर तिलक धारण करें ।

मदाराधन काले च सदा यज्ञादि कर्मणि ।

अवश्यं धारयेदेतदूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजोत्तमः । । ब्रह्माण्ड

भगवान कहते हैं कि ब्राह्मण हमारी पूजा तथा यज्ञादि कर्म में तिलक अवश्य धारण करें ।

यज्ञ दान तपो होम जप स्वाध्यायकर्मसु ।

तत्फलं प्राप्तयेवश्यं धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम् । । ब्रह्माण्ड

यज्ञ दान तप होम जप स्वाध्याय कर्मों की फल प्राप्ति के लिये उर्ध्वपुण्ड्र तिलक अवश्य धारण करे ।

श्रौत स्मार्त किया सर्वा उर्ध्वपुण्ड्रमकुर्वताम् ।

जायन्ते निष्फला ब्रह्मन्वाधिताश्चभवन्ति ताः । । ब्रह्माण्ड

सभी श्रौत स्मार्त तथा कर्म तिलक धारण किये विना निष्फल हो जाते हैं । और वे सभी कर्म बाधित होते हैं । अतएव तिलक अवश्य धारण करे ।

उर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रो मृतो वा यत्र कुत्रचित् ।

श्वपचोपि विमानस्थो ममलोके महीयते । । ब्रह्माण्ड

ब्राह्मण या चाण्डाल ही क्यों न हो, यदि तिलक धारण किये जहाँ कहीं भी मर जाय तो अन्त में भगवान के समीप जाता है ।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः ।

अवश्यं धारयेत्पुण्यमूर्ध्वपुण्ड्रं सुशोभनम् । । ब्रह्माण्ड

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी, ये सभी सुन्दर उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करे ।

उर्ध्वपुण्ड्राङ्कितो मर्त्यो यत्कुर्यात्कर्म वैदिकम् ।

तत्सर्वं सफलं तस्य भवत्येव संशयः । । नारद पुराण

जो उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण कर वैदिक कर्म करता है उसके सम्पूर्ण कर्म सफल हो जाते हैं । इसमें संशय नहीं ।

उर्ध्वपुण्ड्र मृदा शुक्लं यो धत्ते नित्यमात्मवान् ।

तस्य प्रसादं कुरुते विष्णुर्लोक नमस्कृतः । । नारद संहिता

जो महात्मा सदा सफेद मिट्टी का उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं उनपर भगवान विष्णु कृपा करते हैं ।

प्रशस्ते पर्वताग्रादौ जातया श्वेतमत्स्रया ।

उच्चार्य केशवादीनि नामान्यङ्गे यथा क्रमम् । । पादसंहिता

पर्वत में होने वाली श्वेत मृत्तिका उत्तम होती है । केशवादि द्वादश नामों का उच्चारण करते हुये तिलक धारण करे ।

गिरौ नदीतटे वाथ वल्मीके जलधेस्तटे ।

श्रीमत्तुलसिकामूले विष्णु क्षेत्रे यदि द्विजः ।

सर्वतः सन्ति सरितो वल्मीका सन्ति भूतले ।

पर्वताः सन्तिवहवो समुद्रा सर्वतो वृताः । । परमेश्वर संहिता

पर्वत नदीतट वामी समुद्रतट तुलसी तथा विष्णुक्षेत्र की मिट्टी से तिलक लगाना चाहिये ।

सिन्धु तीरेऽथ वल्मीके विल्वमूले जलाशये ।

पर्वताग्रे नदीतीरे मम क्षेत्रे विशेषतः ।

अन्येष्वपि च तीर्थेषु नलिनी मूलकेषु च ।

स्थानेष्वेतेषु गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यत्र मानवः । । ब्रह्माण्ड

समुद्रतट, वामी, बेल की जड़, तालाब, पर्वत, नदीतट तथा दिव्यदेश, अन्यतीर्थ, कमलमूल, इन सब जगहों की मिट्टी तिलक के लिये लेनी चाहिये ।

श्वेतप्रधानतो ग्राह्या उर्ध्वपुण्ड्रस्य धारणे ।

सा च स्थानविशेषेण विशेष फलदा भवेत् । । नारद संहिता

उर्ध्वपुण्ड्र के लिये श्वेत मिट्टी प्रधान है। वे भी विशेष स्थान से विशेष फल देनेवाली है। यथा रङ्गपुरी, यादवादि ।

उर्ध्वपुण्ड्रं द्विजकुर्याददण्डाकारं सुशोभनम् ।

मध्येच्छिद्रं विजानीयात्त्वैष्णवानां विशेषतः । ।

ब्राह्मण उर्ध्वपुण्ड्र तिलक दण्ड के समान ऊपर की ओर खड़ा करे तथा बीच में श्रीचूर्ण लगाने के लिये जगह रखे ।

दीपाकारं तत्क्षितिः वेणुपत्रसमाकृतिः ।

पदमस्य मुकुलाकारं कुमुदस्योत्पलस्यवा । । ब्रह्मसंहिता

तिलक के बीच में श्रीचूर्ण दीपशिखा वंशपत्र विना खिले कमलपुष्प तथा विने खिले भेटपुष्प के समान लगावे । अर्थात्नीचे चौड़ा तथा ऊपर पतला दीपशिखा के समान श्रीचूर्ण धारण करे ।

धारयेच्छिद्र मध्येतु हरिद्रा चूर्णमृतमम् । अर्थात् श्रीचूर्ण हरदी का हो न कि लाल रंग आदि ।

नासिकामूलमारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत् ।

नासिका त्रितयं भागं नासिका मूलमिष्यते । ।

भौं के बीच से नाक के तिहाई भाग तक वेलीपुष्प के एक दल के समान तिलक का सिंहासन पहले करे । बाद में आसन के ऊपर भाग में भगवान के युगल चरण के समान दण्डाकार केश के समीप तक श्वेत तिलक लगावे और बीच में दीपशिखा के समान श्रीचूर्ण धारण करे ।

हरदी धारण का महत्व

हरिद्राति पर प्रेम्णा निजार्थोऽत्र विचार्यताम् ।

प्रापणाच्चहरेः साक्षाद्धरिद्वयं प्रकीर्तिता । 84

लक्ष्म्याः प्रेमतरु साक्षाद्धरेत्यन्त वल्लभः ।

संवीक्ष्य चिह्नितं तेन भक्तं प्रीणाति केशवः । । 85

लक्ष्मीप्रेमात्मकं द्रव्यं साक्षात्किं करोति च ।

धनधान्यं समृद्धिं च रूपसौभाग्य संपदम् । । 86 । । ब्रह्म संहिता

समुद्र मंथन काल में जब लक्ष्मी भगवान को प्राप्त करना चाही उस समय उनकी आंखों से प्रेमाश्रु पतन होकर हरिद्रा रूप में हो गयी । वह हरिद्रा भगवान को अत्यन्त प्यारी हुई । वही हरदी का चूर्ण भक्तों के शिर पर लगे देखकर भगवान प्रसन्न होते हैं । वह लक्ष्मी की प्रेमरूपा हरदी साक्षात् क्या क्या नहीं कर सकती । अर्थात् धन धान्य सब प्रकार की समृद्धियां सौभाग्य तथा संतति देती है । लक्ष्मी के चिह्न को धारण करने वाला पुरुष भगवान के प्रेमपात्र बन जाता है । यह ब्रह्मसंहिता में भगवान का वचन है ।

लक्ष्मीरूपमिदं द्रव्यं पुण्ड्रमध्ये विभर्तियः ।

दास्यं स लभते विष्णोः सत्यंसत्यंब्रवीम्यहम् । । ब्रह्म संहिता

लक्ष्मीरूप श्रीचूर्ण को जो उर्ध्वपुण्ड्र के बीच धारण करता है वह विष्णु का भक्त हो जाता है । यह ध्रुवसत्य है । तिलक में दोनों श्वेत रेखायें भगवान विष्णु के प्रतीक हैं तथा बीच की पीत रेखा लक्ष्मी का प्रतीक है । यथाः पुण्ड्ररूपेण मां विद्धि रेषा रूपेण वै श्रियम् । ब्रह्म संहिता ।

विवाह व्रतबन्धादि जन्मयात्रा सुयुज्यते ।

द्रव्यं मांगलिकं साक्षाद्धरिद्वयं प्रेम भाजनम् । । ब्रह्म संहिता ।

हरदी विवाह उपनयन जन्मकाल में दर्शनी तथा यात्रा में मांगलिक है।

इससे सर्वत्र मांगलिक कार्यों में हरिद्रावन्दन हरदि मातृका वरकन्या के शरीर पर चढ़ाया अथवा लगाया जाता है। भगवान के पीताम्बर वस्त्रादि भी इसी का सूचक है। यथा :

पीत झीन झिगुली पहिराये । मानस वाल 198 । 6

कटि तूणीर पीत पट बान्धे । मानस वाल 243 । 1

पीत यज्ञ उपवीत सुभाये । मानस वाल 243 । 1

पीत उपरना कांखा सोती । मानसवाल 326 । 4

श्रीनिवास भगवान के युगल चरणाकृति उर्ध्वपुण्ड्र तिलक सर्व आत्माओं के भगवच्चरणही शरण हैं अर्थात् सर्वविध रक्षक, उपाय, उपेय हैं, इसका सूचक है।

अवतार लेकर लोकसंग्रह के लिये भगवान राम एवं कृष्ण भी तिलक लगाते थे। यथा : “भाले दधानं शीत उर्ध्वपुण्ड्रं मध्येश्रियं पीत विराजमानम् ।” “भाल विशाल तिलक झलकाही ।” मानस वाल 242 । 3

भगवान अर्चामूर्ति में तिलक लगाये रहते हैं। आज भी रामलीला में राम मूर्ति को तिलक लगाया जाता है। परम भागवत प्रह्लाद नारद आदि भी पूर्व में तिलक धारण किये रहते थे। यथा :

प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक । व्यासाम्बरीष शुक शौनक भीष्मदाल्भ्यान्रूक्मांगदार्जुन वशिष्ठ विभीषणादि पुण्यानिमान्परम भागवतंस्मरामि । ।

प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक व्यास अम्बरीष शुकदेव सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार भीष्मपितामह शौनक दालभ्य रूक्मांगद अर्जुन वशिष्ठ विभीषण ये सब परमभागवत उर्ध्वपुण्ड्रधारी थे।

अहो अमीषां किमकारि शोभनं

प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।

यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे

मुकुन्द सेवौपयिकं स्पृहाहि नः । भागवत 5 । 19 । 21

देवता कहते हैं कि अहो जिन जीवों ने भारतवर्ष में भगवान की सेवा के योग्य मनुष्य जन्म प्राप्त किया है उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है ? अथवा इनपर क्या स्वयं हरि ही प्रसन्न हो गये हैं ? इस परम सौभाग्य के लिये तो हम निरन्तर तरसते रहते हैं।

किं दुस्करैर्नः कतुभिस्तपोव्रतै

दानादिभिर्वाद्यु जयेन फल्गुना ।

न यत्र नारायणपाद पंकज

स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् । भागवत 5 । 19 । 22

देवता कहते हैं कि हमें बड़े कठोर यज्ञ तप व्रत और दानादि करके जो यह तुच्छ स्वर्ग का अधिकार प्राप्त हुआ है इससे क्या लाभ है ? यहाँ तो इन्द्रियों के भोगों की अधिकता के कारण स्मृति शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः कभी भी श्रीमन्नारायण के चरण कमलों की स्मृति होती ही नहीं है।

न यत्र वैकुण्ठकथा सुधापगा

न साधवो भागवतस्तदाश्रयाः ।

न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः

सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् । । भागवत 5 । 19 । 24

जहाँ भगवत कथा की अमृतमयी सरिता नहीं बहती, जहाँ भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ नृत्य गीतादि के साथ भगवान की पूजा नहीं की जाती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उस स्थान का सेवन नहीं करना चाहिये ।

चतुस्त्रिद्वयङ्गुलं वापि विस्तारं परिकल्पयेत् ।

ललाटे केशवायेति चतुरङ्गुलमायतम् । । पराशरपरमधर्म शास्त्र

उर्ध्वपुण्ड्र की चौड़ाई चार तीन*अथवा दो अंगुल की होनी चाहिये । ललाट के भौं से केश के समीप तक तिलक की लम्बाई होनी चाहिये ।

नाभि प्रदेश में दश॥ हृदय प्रदेश में आठ, कण्ठ में चार, दहिनी कोख में दश, बायीं भुजा के बीच आठ, बायें कन्धे पर चार, पीठ पर चार एवं पीठ के उपरी भाग में चार अंगुल लम्बा तिलक केशवादि द्वादश नामों से धारण करे ।

उर्ध्व शब्द का अर्थ परमात्मा तथा परमात्मा का परमधाम वैकुण्ठ है । यथा “उर्ध्व गच्छन्ति सत्त्वस्था” गीता 14 । 18 । अर्थात् तमहात्मा परमधाम वैकुण्ठ को पाते हैं । पुण्ड्र शब्द का अर्थ तिलक है । इसका आशय है कि उर्ध्वपुण्ड्र तिलकधारी अंत में परमधाम वैकुण्ठ पाते हैं ।



